ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-8* October- 2020
Innovation The Research Concept

वर्तमान हिंदी कविता – नवीन विमर्श

Present Hindi Poem :New Discussions

Paper Submission: 10/10/2020, Date of Acceptance: 20/10/2020, Date of Publication: 21/10/2020

कैलाश चंद सैनी
सहायक आचार्य,
हिंदी विभाग,
श्री कल्याण राजकीय कन्या महाविद्यालय, सीकर,
राजस्थान, भारत

सारांश

समाहार रूप में कहा जा सकता है कि 1990 के दशक के पश्चात कविता का स्वर वास्तविक रूप में सामाजिक अंतर्विरोधों के प्रतिरोधक स्वरों को प्रकट करता परिलक्षित होता है।

अब कविता आदर्शवाद के धरातल पर न रहकर यथार्थ के अतिवाद को प्रस्तुत करती है। वर्तमान समाज में पैदा होने वाले समस्त सामाजिक अंतर्विरोधों की मुखर अभिव्यक्ति वर्तमान कविता में स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त है। नवीन कवियों में मंगलेश डबराल, वीरेन डंगवाल, उदय प्रकाश, अरुण कमल, चंद्रकांत देवताले, ओमप्रकाश वाल्मीकि सरीखे यथार्थवादी कवियों ने समाज की विद्रूपताओं को मुखर अभिव्यक्ति दी है। इन सभी कवियों ने वैश्वीकरण, बाजारवाद, सांप्रदायिकता, सामाजिक अंतर्विरोध, एकाकीपन, शोषण, अत्याचार तथा दलित विमर्श को अपनी विषय वस्तु बनाकर समाज के सामने वर्तमान कविता का परिदृश्य स्पष्ट किया है। निश्चित रूप से वर्तमान कविता समाज का वह आइना है जिसमें हम उसके समस्त विद्रूप दृश्यों को यथार्थ के साथ देख सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं।

It can be said that in the post-1990s form, the tone of the poem is reflected reflecting the resistance to social contradictions in real terms.

Now poetry does not remain on the ground of idealism, it presents the extremism of reality. The vocal expression of all the social contradictions arising in the present society is clearly expressed in the present poem. Among the new poets, such as Manglesh Dabral, Viren Dangwal, Uday Prakash, Arun Kamal, Chandrakant Devatale, Omprakash Valmiki, realistic poets have given vocal expression to the society's rebellions. All these poets have made clear the scenario of current poetry in front of society by making globalization, marketism, communalism, social contradiction, isolation, exploitation, oppression and Dalit discourse as their subject matter. Certainly the present poem is the mirror of society in which we can see and experience all its squid scenes realistically.

मुख्य शब्द : अंतर्विरोध संचेतना,वैश्वीकरण, बाजारवाद, चांदी का जूता, दुष्चक्र में स्रष्टा, क्रूर यथार्थ।

Contradiction Conscious, Globalization, Marketism, Silver Shoe, Vicious Circle, Cruel Reality.

प्रस्तावना

1990 के दशक के पश्चात कविता का स्वर तीव्रता से सामाजिक अंतर्विरोधों का प्रतिरोध करता हुआ दिखाई देता है। अब कविता ने सीधा घात किया है। उसका प्रहार अब आदर्शवादी चोट नहीं मारता है ।यह चोट यथार्थ के हथौड़े से प्रतिरोध की है जो बहुत गहरी है। जड़ों को उखाड़ फेंकने वाली है। कविता का वर्तमान में प्रतिरोधक स्वरों से पोषण करने में कवियों के साथ कवयित्रियों ने भी अपनी महती भूमिका निभाई है। आज की कविता में प्रकृति तथा मनुष्य की परस्परता में रची बसी लोक संस्कृति की स्मृतियों के साथ जीवन के प्रति संशक्ति एवं व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध की चेतना है। समकालीन कविता के विशिष्ट हस्ताक्षर मंगलेश डबराल ग्रामीण संवेदना एवं नगरीय जीवन बोध के कवि हैं। 1990 प्रवृत्ति कविता में मंगलेश डबराल के ,हम जो देखते हैं 1995 और आवाज भी एक जगह है 2000 अपनी समृद्ध काव्य संवेदना और जीवन बोध से संपन्न हैं। आवाज भी एक जगह है, इनकी 50 कविताओं का संग्रह है ।यह आवाज भी वह है जो समकालीन जीवन और काव्य में कवि की उपस्थिति और हस्तक्षेप दर्ज कराती है। शब्दों के परदे के पीछे अभिव्यक्ति के लिए तड़पती आवाज में जीवन छिपा है। यही आवाज पूरी जिंदगी से हमारा साक्षात्कार

करवाती है। हमारे सामने बेपर्दा होती जिंदगी मेंएक और जमाने का क्रूर यथार्थ व्यवस्था की है। मानवीयताएवं सांस्कृतिक संकट की स्थितियां हैं तो दूसरी ओर कवि की स्मृतियों और इच्छाओं का एक संसार भी है। यथार्थ से मुठभेड़ करते हुए कभी हमारे भीतर एक बेचौनी पैदा करता है कभी प्रतिरोध की भावना जगाता है और कभी समाज का गवाह बनकर प्रस्तुत होता है। मंगलेश डबराल के काव्य में प्रेम के व्यापक रूप की प्रतिष्ठा है, आदिम स्मृतियों से छनकर आता हुआ प्रेम ही कवि को एक नई पहचान देता है। कवि ने जिन स्त्रियों से प्रेम किया उनका आत्मिक प्रकाश तथा उनकी मनुष्यता कवि के भीतर सदा के लिए समा गई। कवि की स्पष्ट स्वीकारोक्ति है।,, अगर मुझ में कुछ गुण है तो उससे ज्यादा कुछ मुझे स्त्रियों से ही मिले हैं और मैं खुद को भी भीतर से आधा स्त्री महसूस करता हूं और कभी–कभी सोचता हूं कि अगर मैं वाकई स्त्री होता तो इस संसार को प्रेम की कोमलता और जगमगाहट से भर देता।1 समसामयिक संवेदना और सामाजिक अंतरविरोधों को प्रस्तुत करने वाले कवि वीरेन डंगवाल भी वर्तमान कविता के प्रतिनिधि हस्ताक्षर हैं। उनकी दुष्चक्र में स्रष्टा कविता समकालीन अंतर्विरोध तथा संचेतना को सशक्त व स्पष्ट रूप में चित्रित करती है। सामाजिक सांस्कृतिक तथा पारिस्थितिक विमर्श की दृष्टि से भी यह काफी महत्वपूर्ण कविता है। सृष्टा का दुष्चक्र में पड़ना मनुष्य का दुष्चक्र में पड़ना है । कभी सोचते हैं कि ईश्वर का सृजन विलक्षण है छत पर उल्टा सरपट भागती छिपकली, बगैर बिजली के चालू नदियां, हाथी और चीटी, कुत्ते की पतली गुलाबी जीभ, आदमी की आंतडिया एवं रसायनों का तंत्र जाल और उसका दिमाग तक विलक्षण है। कवि की शंका है कि ईश्वर ने इन कारनामों में हेरफेर क्यों शुरू की है क्योंकि वर्तमान समाज ईश्वर की सृष्टि और प्रकृति विधान से विपरीत चल रहा है। कवि का प्रश्न है.....

नहीं निकली नदी कोई पिछले चार–पांच सौ साल से
जहां तक मैं मानता हूं,
न बना कोई पहाड़ या समुद्र
एकाध ज्वालामुखी जरूर फूटते दिखाई दे जाते हैं कभी–कभार।[2]

वैश्वीकरण और बाजारवाद के युग में मनुष्य ने प्रकृति का दोहन सीखा है। मनुष्य प्रगति और टेक्नोलॉजी के रास्ते पर है परंतु यहां बाढ़, अकाल,भूकंप, तूफान अपना भयावह विनाश लेकर आते ही रहते हैं। हत्याओं अकालों, युद्धो कि कहीं कोई कमी नहीं है। मानवता एकता की भावना गायब हो गई बस भूख ही ऐसी समानता है जो सब में विद्यमान है बराबर..... वर्तमान समाज में धार्मिक भावनाएं कलंकित हो गई है। सांप्रदायिकता से मनुष्य रक्त स्नात हो गए हैं वीरेन डंगवाल की कविता की जबानी....

बाढें तो आई खैर भरपूर
काफी तूफान भूकंप....
खून से लबालब हत्याकांड अलबत्ता हुए खूब....
खूब अकाल, युद्ध एक से एक ...तकनीकी चमत्कार
रह गई सिर्फ एक सी भूख .....लगभग एक सी
फौजी वर्दियां जैसे मनुष्य मात्र की एकता प्रमाणित करने के लिए।[3]

आज के परिवेश में सबसे बड़ी लड़ाई वर्चस्व की है। शक्तिशाली अत्याचारी सब को पीछे छोड़ना चाहते हैं परंतु जब दुर्बल और असहाय को दमित करने का सवाल आता है तो सारे शक्तिशाली एक जगह खड़े हो जाते हैं। यह शक्तिशाली एक होते हैं या तो दलितों को मार डालने के लिए या फिर अपने हिसाब से जीवित रहने के लिए..... उदय प्रकाश के शब्दों में....

चलिए मैं भी पूछता हूं
क्या मांगू इस जमाने से मीर....
जो देता है भरपेट को खाना दौलतमंद को सोना, हत्यारे को हथियार
बीमार को बीमारी, कमजोर को निर्बलता
अन्यायी को सत्ता और व्यभिचारी को बिस्तर....।[4]

खाना दौलत हथियार बिस्तर शराब और सत्ता किसे नहीं चाहिए। इसलिए अधिकांश विषमता ग्रस्त जमाने के साथ है जिनके पास यह सब है वह इसे और बढ़ाने और मजबूत करने में लगे हुए हैं जिनके पास नहीं है वह हर तरीके से हासिल करने में जुटे हैं हासिल करते ही विषमता उनके लिए कोई समस्या नहीं रह जाती है चंद्रकांत देवताले के अनुसार

मैं शिकायत करने को कहां जाऊं?
हर जगह चांदी का जूता गडा है प्रजातंत्र की रथ यात्रा निकल रही है.....
औरतों और बच्चों को रौंदा जा रहा है .....
गुंडों और नोटों की ताकत से हतप्रभ लोग खामोश खड़े हैं।[5]

आज के समय का बड़ा सच है चांदी का जूता.... . जो उसके तलवे सहलाएं उसकी चांदी है। चांदी से जूते का रिश्ता.... धन से अपराध की मिलीभगत है.... धन और अपराध इस दौर में और करीब आ गए हैं।दोनों की एक ही जन विरोधी मिलीभगत है। इतने शातिर है कि जनता के विरोध को भी जोंक की तरह चूस लेती है। धूमिल ने इन्हीं के बारे में कहा था .....

कि वे जिसकी पीठ ठोकते हैं....
उसकी रीड की हड्डी गायब हो जाती है।
वह मुस्कुराते हैं और दूसरे की आंख में झपटती हुई प्रतिहिंसा करवट बदल कर सो जाती है।[6]

इस तरह और सुरक्षित दीर्घ जीवी हो जाती है सताने वालों की ताकत.....

वीरेन डंगवाल की एक लकड़हारे की अधूरी कविता में सताने वाले अपना परिचय इस तरह देते हैं.....

जिंदगी भर हम तुमसे दगा करते आए हैं
तुम्हारी लकड़ियों पर सेकी है हमने अपनी रोटियां।
तुम्हारे कार्ड की तरह सुलगते हाथों को तापा है।
तुम्हारी हड्डियां निकाल कर बनाए हैं अपनी हिफाजत के लिए वज्र .....
तुम्हारे दुख को नहीं छोड़ा है अपनी कविताओं के लिए.....

नींबू की तरह फिर तुम्हारी खाल को मसक की तरह टांग कर हम खेद जताते रहे।[7]

यह खेद जताना मौखिक है और दमित का तरह तरह से इस्तेमाल है। वास्तविक है यह इस्तेमाल करने वाले क्रूर,अमानवीय भी बेशर्म प्राणी हैं। उनकी करुणा खोखली है, केवल दिखावटी, वास्तव में वह उस कपड़े जैसी है जो सारी क्रूरताओं को ढके हुए हैं।आज चारों तरफ शक्तिशाली ने दमित के लिए कुछ भी उसका नहीं रहने दिया सब पर शोषक का ही अधिकार है.....

ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में.....

चूल्हा मिट्टी का, मिट्टी तालाब की, तालाब ठाकुर का ,
भूख रोटी की, रोटी बाजरे की ,बाजरा खेत का, खेत ठाकुर का,
बैल ठाकुर का, हल ठाकुर का, हल की मूठ पर रखी हथेली अपनी ....
फसल ठाकुर की, कुंवा ठाकुर का,
पानी ठाकुर का, गली मोहल्ले ठाकुर के..... फिर अपना क्या ?गांव? शहर? देश?.....[8]

दो बूंद पानी और दो टुकड़े रोटी तक के लिए मेहनतकश जहां ठाकुर पर निर्भर हो वहां न्याय –अन्याय,अच्छाई– बुराई नेक –नामी, बदनामी के तमाम प्रतिमान भी ठाकुर ही तय करता है।

समाज में शोषण व अत्याचार इस कदर व्याप्त है कि हत्यारा होता कोई है, सजा पाता कोई है। बड़े लोग, शक्तिशाली शासक आम आदमी का इस्तेमाल करते हैं।सारे अर्थों में वही पापी है। कभी संज्ञा बनकर, कभी सर्वनाम बनकर.... वीरेन डंगवाल ने अपनी कविता में राम सिंह से पूछते हैं.....

तुम किस की चौकसी करते हो राम सिंह.....
तुम बंदूक के घोड़े पर रखी किसकी उंगली हो ?
किसका उठा हुआ हाथ?
किसके हाथों में पहना हुआ काले चमड़े का नफीस दस्ताना ?
जिंदा चीज में उतरती हुई किसके चाकू की धार?
कौन है? वह कौन है ?
वे माहिर लोग हैं राम सिंह ....
वे हत्या को भी कला में बदल देते हैं.....[9]

कला यह है कि हत्या वे करते हैं और हत्यारे साबित होते हैं राम सिंह..... जो शोषक और धूर्त हैं उनका हित इसी में है कि यह चतुराई कला की तरह समाज में प्रतिष्ठित हो।

आज के इस विषमता ग्रस्त अभावग्रस्त समाज में यह प्रतिष्ठित होती भी है..... अरुण कमल के शब्दों में....

मां बहनों की इज्जत लूटी जिन लोगों ने,
उन की जय हो....
खून बहाया मासूमों का जिन लोगों ने....
उन की जय हो.....10

वर्तमान परिवेश में अन्याय को अन्याय करने में किसी भी तरह का संकोच नहीं है..... और न ही बाद में पश्चाताप.....

यह मानवीय कृत्य करना उसे स्वाभाविक तथा उचित लगने लगा है। यहीं से अंतर्विरोध उत्पन्न होता है। इनकी आत्मा तो विरोध करती है परंतु आदमी अपनी इच्छा, लालसा, अहंकार प्रसूता के वशीभूत होकर यह अमानुषी कृत्य करता जाता है और इसमें अपनी शान समझता है।पाप को अपना अधिकार समझता है।कोई अपनी पत्नी को पीट रहा है बेतहाशा..... कहता है मेरी औरत है .....कोई अपने नौकर की नन्ही पीठ जूते से हूमच रहा है। कहता है। मेरा नौकर है.....और कोई तानाशाही हजारों लोगों की को गोलियों से भून रहा है .....मुस्कुराता हुआ कहता है। मेरी जनता है।[11]

समस्त वातावरण में इन्हीं लोगों के घृणित कृत्य तैर रहे हैं। सारा वातावरण दुर्गंध से भरा है। घुटन से भरा है। इन्हीं शक्तिशालियों, अन्यायियों ने जातिवाद पैदा किया है। इन्होंने ही अंधविश्वास की खाई में सांप्रदायिकता की आग में धर्म को झोंका है।कहा जाता है कि हर आत्मा ब्रह्म का अंश है लेकिन दलितों के साथ ऐसा सलूक किया गया कि जैसे उनकी आत्मा शैतान का अंश हो..... ऐसा लगता है कि इस सलूक ने तो ब्रह्म को ही वस्त्र विहीन कर दिया..... ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस पीड़ा को इस प्रकार उजागर किया है.....

गंगा किनारे कोई वटवृक्ष ढूंढ कर भागवत का पाठ कर लो आत्म तुष्टि के लिए...

कहीं अकाल मृत्यु के बाद भयभीत आत्मा
भटकती लालसा में किसी डोम चूहडे के घर पैदा ना हो जाए
चूहडे या डोम की आत्मा ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है ?.....
मैं नहीं जानता! शायद आप जानते हो.....[12]

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध पत्र के माध्यम से कविता मे अंतर्विरोधों की मुखर अभिव्यक्ति हुई है। इससे सुधी समीक्षकों को अवगत करवाना तथा समाज में भयानक रूप से छाए अंतर्विरोध को पाटने के लिए जागृत करना है। निश्चित रूप से युवा पाठक एवं सुधी समीक्षक इस शोध पत्र को पढ़कर वर्तमान समाज के लिए कुछ श्रेष्ठ कर पाएंगे।

निष्कर्ष

समाहार रूप में कहा जा सकता है कि वर्तमान हिंदी कविता में विमर्श के अनेक आयाम स्थापित हुए हैं। वर्तमान कविता ने विभिन्न स्तरों पर यथा सामाजिक अंतर्विरोध, बाजारवाद, सांप्रदायिकता, अति यथार्थवाद, पारिवारिक विघटन, बलात्कार तथा अनेक प्रकार की विद्रूपताओं को प्रस्तुत किया है। निश्चित ही सुधि समीक्षकों के लिए विमर्श के नए फलक वर्तमान कविता ने खोल दिए हैं ।समाज का आदर्शवादी रूप में न होकर यथार्थवादी रूप का चित्रण करना ही वास्तविकता से रूबरू करवाना है। हमें निश्चित ही इन अंतर्विरोध को पाटने का प्रयास करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *साक्षात्कार मंगलेश डबराल से ओम निश्चल का अगस्त 2004*
2. *वीरेन डंगवाल– दुष्चक्र में स्रष्टा*
3. *वीरेन डंगवाल –दुष्चक्र में स्रष्टा*
4. *उदय प्रकाश रात में हारमोनियम पृष्ठ 41*

5. चंद्रकांत देवताले उसके सपने संपादन विष्णु खरे पृष्ठ 156
6. धूमिल– संसद से सड़क तक पृष्ठ 110
7. वीरेन डंगवाल– दुष्चक्र में स्रष्टा पृष्ठ 116
8. अपेक्षा 12 अंबेडकरवादी युवा कविता विशेषांक जुलाई सितंबर 2005 पृष्ठ 105
9. संकल्प कविता दक्ष संपादक केदारनाथ सिंह पृष्ठ 141
10. अरुण कमल सबूत पृष्ठ 64
11. वही पृष्ठ 60
12. ओमप्रकाश वाल्मीकि– बस्स ! बहुत हो चुका पृष्ठ 13